नईदुनिया



संपादकीय

# लोकतंत्र के नाम पर

*अमेरिका में राष्ट्रपति ट्रंप की सरकार के समय खर्च कम करने की मुहिम के तहत डीओजीई की एक घोषणा ने भारत में विवाद खड़ा कर दिया है। सवाल उठ रहे हैं कि विदेशी दखल के लिए कोई फंडिंग हुई या नहीं। तत्कालीन चुनाव आयुक्त एस वाई कुरैशी ने एमओयू की पुष्टि की, लेकिन पैसों के लेनदेन से इनकार किया। यह देखना दिलचस्प है कि अमेरिका में राष्ट्रपति ट्रंप की सरकार आने के बाद शुरू हुई खर्च कम करने की आंतरिक मुहिम से जुड़ा एक कदम कैसे भारत की घरेलू राजनीति में एक नए विवाद का कारण बन गया है। एलन मस्क की अगुआई वाले डिपार्टमेंट ऑफ गवर्नमेंट एफिशिएंसी की ताजा घोषणा अमेरिकी टैक्सपेयर्स का पैसा फालतू मदों में बर्बाद होने से बचाने का दावा करती है, लेकिन अपने देश में चर्चा यह हो रही है कि इस रकम का एक हिस्सा भारतीय लोकतंत्र में विदेशी दखलंदाजी सुनिश्चित करने वाला था।*

*वैसे, जो घोषणाएं अभी तक हुई हैं, उनसे यह स्पष्ट नहीं हो रहा है कि वास्तव में कोई भुगतान हुआ है या नहीं और हुआ है तो किसे, कितना मिला है। मस्क ने भी सोशल मीडिया एक्स (पहले ट्विटर) पर अपनी पोस्ट में यही बताया कि जो आवंटित राशि थी, उसकी फंडिंग रोक दी गई है। लेकिन चर्चा में वह सहमति पत्र है, जिस पर यूपीए के शासनकाल के दौरान 2012 में हस्ताक्षर हुए थे।*

*तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त एस वाई कुरैशी ने हालांकि एमओ की पुष्टि की, लेकिन एक पैसे के भी लेनदेन से स्पष्ट इनकार किया। ऐसे में यह सवाल बचा रह जाता है कि अगर वाकई उस कार्यक्रम के तहत भारत में पैसे भेजे गए थे तो किस तरह से, किन लोगों को भेजे गए और उन पैसों का आखिर किस रूप में इस्तेमाल हुआ। चूंकि ये सवाल सत्तारूढ़ तबके की ओर से ही उछाले जा रहे हैं, इसलिए याद दिलाना जरूरी है कि उनका काम हवा में सवाल फेंककर संदेह का माहौल बनाना नहीं बल्कि मामले की तह तक पहुंचकर ठोस सबूतों के साथ संदेह की गुंजाइश समाप्त करना और दोषियों को सजा दिलाना है।*

*जब तक ऐसे सबूत नहीं आते, तब तक साजिश की बातों को ज्यादा अहमियत नहीं दी जा सकती। इस संदर्भ में यह भी याद रखने की जरूरत है कि लोकतंत्र एक वैश्विक मूल्य है। यही नहीं, चुनाव नतीजों को प्रभावित करना एक बात है और मतदान प्रतिशत बढ़ाने के प्रयास करना एकदम अलग बात। जब भारत में इमरजेंसी लागू कर दी गई थी, तब भी बीबीसी जैसे अंतरराष्ट्रीय मीडिया हाउस लोगों तक सही सूचना पहुंचाने की कोशिश में जुटे थे और भारत सहित दुनिया भर के तमाम लोकतंत्र प्रेमी उन कोशिशों की सराहना ही करते थे।*

# विकसित हो भीड़ नियंत्रण का प्रभावी तंत्र

रमेश सर्राफ धमोरा

देश में हम आए दिन भीड़ में भगदड़ मचने से कई लोगों के मरने की खबरें पढ़ते रहते हैं। हाल ही में महाकुंभ स्नान के दौरान प्रयागराज में भीड़ में भगदड़ के चलते 37 लोगों को जान गंवानी पड़ी थी। इस घटना के कुछ दिनों बाद नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर महाकुंभ जाने वालों की भीड़ में अचानक भगदड़ मचने से 18 लोगों की मौत हो गई थी। यह दोनों ही दुर्घटनाएं बहुत दुर्भाग्यपूर्ण व दुखद हैं।

देश में भगदड़ में मरने वालों की सूची बहुत लंबी है। सभी को पता है कि जहां बड़ी संख्या में लोगों की भीड़ एकत्रित होगी वहां कभी भी भगदड़ मचने की स्थिति पैदा हो सकती है। मगर अभी तक ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बन पाई है जिससे भगदड़ की स्थिति ही उत्पन्न नहीं होने पाए। सरकारें भी भगदड़ होने के बाद उसको रोकने के ढोल पीट कर कुछ समय बाद शांत बैठ जाती है। ऐसा कोई स्थाई तंत्र विकसित नहीं किया जाता है। जिससे भगदड़ की स्थिति होने से पहले ही सुरक्षा कर्मियों को अलर्ट मिले और वह उन पर नियंत्रण कर सके।

भगदड़ भीड़ प्रबंधन की असफलता की स्थिति में पैदा हुई मानव निर्मित आपदा है। भगदड़ प्राय: भीड़ भरे इलाको में किसी अफवाह के कारण भी पैदा हो सकती है। इसके अलावा प्राकृतिक आपदाएं एवं प्रशासनिक अव्यवस्था के कारण भी यह आपदा पैदा होती है। इसमें संपत्ति से अधिक जान की क्षति होने की संभावना रहती है। भीड़ दुर्घटनाओं में होने वाली मौतों के वैश्विक डेटाबेस के मुताबिक सन 2000 के बाद से भारत में 50 से ज्यादा विनाशकारी सामूहिक समारोहों में दो हजार से ज्यादा लोगों की जान चली गई। इन दुर्घटनाओं को देखते हुए प्रभावी भीड़ प्रबंधन तंत्र विकसित करने की बहुत जरूरत महसूस की जा रही है। खासकर कुंभ जैसे बड़े आयोजनों में इसकी काफी जरूरत महसूस होती है।

भगदड़ बेहद खतरनाक और घातक स्थिति होती है। किसी भी जगह जब भीड़ उसकी क्षमता से अधिक हो जाती है और लोगों के पास निकलने का रास्ता नहीं होता है, भीड़ की वजह से लोगों को पैर रखने की जगह नहीं मिलती है, ऐसी स्थिति में किसी तरह की अफवाह या दुर्घटना होने पर भीड़ बेकाबू हो जाती है। इसे भीड़ में हलचल भी कहा जाता है। इसकी वजह से ही भगदड़ की स्थिति बनती है। इसी तरह भीड़ में हलचल का मतलब भीड़ का बेतरतीब तरीके से एक से ज्यादा दिशाओं में एक ही समय में आगे बढ़ना है। ऐसे में लोगों को चलने के लिए जगह कम होती है वो एक-दूसरे के बीच दब जाते हैं। जब लोग एक-दूसरे से बहुत नजदीक होते हैं तो 'फोर्सेज का ट्रांसमिशन' यानी बल का संचरण हो सकता है। इस फोर्स ट्रांसमिशन को आपने भी कभी न कभी तब महसूस किया होगा जब आप एक बहुत भीड़भाड़ वाली किसी लाइन में खड़े हुए होंगे। जब पीछे से अचानक धक्का लगता है तो व्यक्ति खुद भी उस धक्के को अपने से आगे खड़े व्यक्ति को ट्रांसफर कर देते हैं। ऐसे में अपना संतुलन बनाए रखना और अपने पैरों पर खड़े रहना लोगों के लिए बहुत मुश्किल हो जाता है। ये पहली बार नहीं था जब किसी धार्मिक कार्यक्रम के दौरान भगदड़ मची हो। इसके पहले भी समय-समय पर भगदड़ मचने की खबरें सामने आती रही हैं। इन घटनाओं में कई लोगों की जान भी चली गई। 27 अगस्त 2003 महाराष्ट्र के नासिक जिले में कुंभ मेले में स्नान के दौरान भगदड़ मचने से 39 लोगों की मौत हो गई थी। 25 जनवरी 2005 को महाराष्ट्र के सतारा जिले में मंधारदेवी मंदिर में भगदड़ मच गई थी। जिसमें 340 से ज्यादा श्रद्धालु कुचले गए थे। 3 अगस्त 2008 हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर जिले में नैना देवी मंदिर में मची भगदड़ में 162 लोगों की मौत हो गई थी। 30 सितंबर 2008 राजस्थान के जोधपुर शहर में चामुंडा देवी मंदिर में मची भगदड़ में लगभग 250 श्रद्धालुओं की मौत हो गई थी। 4 मार्च 2010 को उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले में कृपालु महाराज के राम जानकी मंदिर में भगदड़ में 63 लोगों की मौत हो गई थी.। 14 जनवरी 2011 को केरल के इडुक्की जिले के पुलमेडु में सबरीमाला मंदिर में एक जीप की टक्कर से मची भगदड़ में 104 श्रद्धालुओं की मौत हो गई थी। 8 नवंबर 2011 को हरिद्वार में गंगा नदी के किनारे हर की पौड़ी घाट पर मची भगदड़ में लगभग 20 लोगों की मौत हो गई थी। 19 नवंबर 2012 को पटना में गंगा नदी पर छठ पूजा के दौरान एक अस्थायी पुल के ढह जाने से भगदड़ मच गई थी जिसमें 20 लोगों की मौत हो गयी थी।

13 अक्टूबर 2013 मध्य प्रदेश के दतिया जिले में रतनगढ़ मंदिर के पास नवरात्रि के जश्न के दौरान भगदड़ मचने से 115 लोगों ने अपनी जान गंवाई थी। 3 अक्टूबर 2014 को दशहरे का जश्न समाप्त होने के तुरंत बाद पटना के गांधी मैदान में भगदड़ मच गई जिसमें 32 लोगों की मौत हो गई थी। 14 जुलाई 2015 को आंध्र प्रदेश के राजमुंदरी में पुष्करम उत्सव के पहले दिन गोदावरी नदी के तट पर भगदड़ मचने से 27 लोगों ने अपनी जान गंवा दी थी। 1 जनवरी 2022 को जम्मू-कश्मीर में माता वैष्णो देवी मंदिर में भगदड़ मचने से 12 लोगों की मौत हो गई थी। 31 मार्च 2023 को इंदौर शहर के एक मंदिर में रामनवमी के मौके पर एक प्राचीन बावड़ी के ऊपर बनी स्लैब के ढह जाने से 36 लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी थी।

इसी तरह रेलवे स्टेशनों पर भी भगदड़ के कारण कई बड़ी दुर्घटनाएं हो चुकी हैं। 28 सितंबर 2002 को लखनऊ में बसपा की रैली से वापस लौटते समय ट्रेन की छत पर चढ़ने से चार लोगों की करंट लगने से मौत हो गई थी। 13 नवंबर 2004 को नई दिल्ली स्टेशन पर छठ पूजा के दौरान बिहार जाने वाले ट्रेन का प्लेटफार्म अचानक बदलने से दूसरे प्लेटफार्म पर जाने के लिए ओवरब्रिज पर मची भगदड़ में चार यात्रियों की मौत हुई थी। 03 अक्टूबर 2007 को मुगलसराय जंक्शन पर भगदड़ मचने के कारण 14 महिलाओं की मौत हो गई थी। 10 फरवरी 2013 को इलाहाबाद में कुंभ मेला के दौरान रेलवे जंक्शन पर भगदड़ मचने से 38 लोगों की मौत हो गई थी। 29 सितंबर 2017 के दिन मुंबई के एलफिंस्टन रेलवे स्टेशन में बने फुट ओवरब्रिज पर भगदड़ मचने के कारण 22 लोगों की मौत हुई थी।

हमारे देश में आए दिन जगह-जगह बड़े-बड़े धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक व अन्य कई प्रकार के आयोजन होते रहते हैं। जिनमें हजारों-लाखों लोग शामिल होते हैं। ऐसे ही कार्यक्रमों में जरा-सी लापरवाही भगदड़ का कारण बन सकती है। ऐसे में यदि कार्यक्रम के आयोजक सावधानी बरतते हुए भीड़ नियंत्रण के पुख्ता इंतजाम करें तभी किसी तरह की दुर्घटना होने से बचा जा सकता है। नई दिल्ली रेलवे स्टेशन व प्रयागराज के महाकुंभ में भी जो भगदड़ की स्थिति पैदा हुई है उसमें प्रशासनिक चूक रही है।

एक स्थान पर अधिक भीड़ इकट्ठा होने पर यदि प्रशासन के अधिकारी सतर्कता बढ़ाते तो ऐसी दुर्घटनाओं को टाला जा सकता था। आगे भी सरकार को चाहिए कि ऐसे किसी भी बड़े आयोजनों के लिए और अधिक पुख्ता व्यवस्था करें। देश में आपदा राहत बल को भी अधिक सशक्त किया जाये ताकि भविष्य में ऐसी घटनाओं से बचा जा सके।

# जनजातीय हितों व श्रद्धा पर केंद्रित हो नई वननीति

डॉ. प्रवीण गुगनानी

वनग्राम, वनों से सटे राजस्व ग्राम, जनजातीय समाज, वनों के भीतर कृषि का अधिकार, जनजातीय समाज को वनों के सीमित उपयोग की अनुमति आदि-आदि विषय मप्र में एक बड़ा सामाजिक सरोकार का प्रश्न रहे हैं। यह प्रश्न अब गहरा रहा है। मप्र सरकार कंपनी, संस्था, व्यक्ति या स्वयंसेवी संस्था को बिगड़े जंगल अनुबंध पर साठ वर्ष हेतु देने के प्रस्ताव पर विचाररत है। नई नीति में निजी क्षेत्र को विभाग के अनुसार नए पौधे लगाने होंगे। दो वर्ष में पौधे नहीं उगे तो अनुबंध समाप्ति का अधिकार शासन के पास सुरक्षित रहेगा। इन वनों का कार्बन क्रेडिट, वन विभाग के माध्यम से विक्रय करेंगे। इस नीति के अनुसार एक हजार हेक्टेयर तक के जंगल को यदि कोई निजी कंपनी विकसित करना चाहेगी तो वनों की पुनर्स्थापना का भी प्रावधान है। अनुबंधित वनों से प्राप्त वनोपज का पांचवां भाग वन समिति और शेष चार भाग वन विकास निगम और निजी कंपनी को मिलेंगे। फल वनोपज का आधा भाग निजी कंपनी को प्राप्त होगा।

मप्र में 37 लाख हेक्टेयर क्षेत्र बिगड़े वन हैं, इसे ही निजी क्षेत्र में सौंपने की तैयारी है। नई नीति के अन्तर्गत निजी निवेशकों का इन वनीय क्षेत्रों की उपज व कार्बन क्रेडिट पर प्रथम अधिकार होगा। नई नीति का नाम सीएसआर एवं कंपनी एन्वायरमेंट रिस्पांसिबिलिटी एवं अशासकीय निधियों के उपयोग से वनों की पुनर्स्थापना है। इसके अंतर्गत मप्र में निजी निवेशक न्यूनतम दस हेक्टेयर वन का चयन कर सकेंगे। नई वन नीति में कई विसंगतियाँ हैं, जिससे वनीय विविधता की हत्या हो जाएगी। जिस प्रकार समर्थन मूल्य के कारण मप्र व अन्य प्रदेशों की कृषि विविधता समाप्त हो गई है, उसी प्रकार वन विविधता समाप्त हो जाएगी। जब वनीय विविधता समाप्त होगी तो सर्वप्रथम वनीय जैव विविधता, बड़ी तीव्रता से समाप्त होगी। वनवासियों हेतु हर वृक्ष का हर उत्सव व ऋतु में अलग-अलग आस्था का सम्बंध होता है। हजारों-लाखों प्रकार के जीव-जंतुओं का भोजन, उनकी औषधियां, उनकी रहवासी आवश्यकताएँ सभी कुछ समाप्त हो जाएंगे। जीव-जंतु तो छोड़िए जनजातीय समाज और नगरीय समाज को मिलने वाली हजारों वनीय औषधियां, जड़ी-बूटियाँ, रसायन, मौसमी उत्पाद सभी कुछ समाप्त हो जाएँगे। प्रकृति की अविरल धारा के समक्ष एक बड़ा अवरोध व परिवर्तन उपस्थित होगा जिससे कई प्रकार की असंगतियाँ-विसंगतियाँ देखने को मिलेंगी। अनुबंध पर जंगल लेने वाले व्यसायी केवल लाभ से सरोकार रखेंगे। निजी वन व्यवसायी और कम्पनियाँ आदि; राष्ट्रीय, पर्यावरणीय, सामाजिक, धार्मिक विषयों के प्रति कोई सरोकार या संवेदनशीलता रखने से तो रहे। व्यावसायिक लाभ ही एकमेव लक्ष्य होगा, इससे वनोपज में असंतुलित वृद्धि तो हो सकती है किंतु पर्यावर्णीय हानि, जैव व वन विविधता की हानि व वनवासी समाज के साथ शासन व शेष समाज के सम्बंध बिगड़ सकते हैं। नई वन नीति की सम्पूर्ण समीक्षा की आवश्यकता है। या तो यह नीति रद्द हो या फिर इस नीति में वनीय, विविधता, जैव विविधता, जलीय सरंचनाओं, वनीय पशु-पक्षियों की आवश्यकताओं, वनवासी बंधुओं की आजीविका आदि विषय में सुरक्षा की गारंटी हो।

नई वन नीति में जिसे बिगड़े वन कहा जा रहा है, उसकी परिभाषा भी तय नहीं है। ग्राम सभा की अनुमति की शर्त भी बड़ी ही आसान व एक औपचारिकता मात्र है। केवल मूल्यवान लकड़ी प्रदान नहीं करने वाले वनों को बिगड़ा हुआ वन मान लेना एक बड़ी प्रदूषित, शोषक, स्वार्थी व एकपक्षीय नीति है। वनवासी बंधुओं की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओं एवं पर्यावरण को दृष्टिगत रखते हुए वनीय विविधता बनी रहे, यह परम आवश्यक है। इस नई वन नीति से हमारी आने वाली पीढ़ियाँ कई वन उत्पादों के केवल नाम ही सुन पाएगी। आज जिस प्रकार कृषि क्षेत्र में केवल दो चार प्रकार के अन्न का उत्पादन हो रहा है व शेष फसलों का उन्मूलन होता जा रहा है, वही स्थिति वनों में भी देखने को मिलेगी। प्रत्येक ऐसे वृक्ष को जिससे आर्थिक लाभ नहीं होता है या कम लाभ होता है, उसे कुल्हाड़ी की बलि चढ़ाकर वहाँ व्यावसायिक लाभ की दृष्टि से मूल्यवान पेड़ लगा दिए जाएँगे। लाभमात्र के मूलमंत्र से पारिस्थितिकी संतुलन व इको सिस्टम समाप्त होगा। वनों में ये कंपनियां बेतहाशा इको टूरिज़्म को बढ़ावा देंगी, यह लाभप्रद तो अवश्य ही होगा किंतु इसके गंभीर साइड इफ़ेक्टस भी हो सकते हैं। आशंका है कि वनों को लेकर अंधाधुंध दोहन की या केवल लाभ की नीति से पर्यावरण असंतुलन उत्पन्न हो सकता है।

वर्ष 2020 में मुख्यमंत्री शिवराज चौहान के समय भी इस प्रस्ताव को लाया गया था जो बाद में फाइलों में बंद हो गया। फ़ाइलों में बंद इस जिन्न को मप्र वन विभाग के नौकरशाहों ने पुन: बाहर निकाला है। यद्यपि यह मध्यप्रदेश की डॉ. मोहन यादव सरकार की संवेदनशीलता ही है कि सरकार ने अभी एकतरफा निर्णय नहीं लिया है तथापि मुख्यमंत्री को जनजातियों के प्रति असंवेदनशील, वन नीति से सावधान रहना होगा। मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में कुछ ही दिन पहले एक टास्क फोर्स की मीटिंग हुई थी, जिसमें वन अधिकार कानून के तहत ग्राम सभाओं को अपने परंपरागत वन क्षेत्र के पुनर्निर्माण, संवर्धन, संरक्षण एवं प्रबंधन के अधिकार देने का निर्णय हुआ था। संभवत: इसी को ध्यान में रखकर मुख्यमंत्री ने इस वन नीति के प्रारूप को अभी सहमति नहीं दी होगी। मप्र शासन ने नई वननीति के संदर्भ में जनता से सुझाव व आपत्तियाँ माँगी हैं। सभी पर्यावरणविदों को सुझाव देना चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि शासकीय आय बढ़ाने के इस उपक्रम को वन शोषण का धत्कर्म बना दिया जाए। वन विकास के नाम पर कहीं हमारे वन, व्यवसाइयों व दलालों की भेंट न चढ़ जाएँ। मप्र की जनता से प्राप्त होने वाले सुझावों और आपत्तियों को देखते हुए नीति में वांछनीय परिवर्तन या संपूर्णत: अस्वीकृत भी किया जा सकता है। मप्र की भाजपा सरकार की ओर से यह शुभ संकेत है और एक अवसर भी।

आजकल

# बचपन पर भारी स्मार्टफोन

**तकनीक** के जरिये विकास की अंधी दौड़ में हम बहुत कुछ खो भी रहे हैं। इंसान कभी मशीन से संचालित नहीं हो सकता। मानवीय संवेदनाएं और अहसास कभी कृत्रिम नहीं हो सकते। दूसरे शब्दों में कहें तो कोई तकनीक, मशीन व उपकरण सहयोगी तो हो सकते हैं, मगर मालिक नहीं हो सकते। कमोबेश यही बात शिक्षा में तेजी से बढ़ते स्मार्टफोन के उपयोग और उसके घातक प्रभावों को लेकर कही जा सकती है।

निस्संदेह, शिक्षा के बाजारीकरण और नई शैक्षिक परिपाटी में मोबाइल की अपरिहार्यता को महंगे स्कूलों ने स्टेटस सिंबल बना दिया है। लेकिन हालिया वैश्विक सर्वेक्षण बता रहे हैं कि पढ़ाई में अत्यधिक मोबाइल का प्रयोग विद्यार्थियों के लिये मानसिक व शारीरिक समस्याएं खड़ी कर रहा है। निस्संदेह, विभिन्न ऑनलाइन शैक्षिक कार्यक्रमों के चलते छात्र-छात्राओं में मोबाइल फोन का इस्तेमाल तेजी से बढ़ा है।

तमाम पब्लिक स्कूलों ने ऑनलाइन शिक्षा के लिए मोबाइल फोन का इस्तेमाल अनिवार्य तक बना दिया है। कमोबेश सरकारी स्कूलों में ऐसी बाध्यता नहीं है। लेकिन वैश्विक स्तर पर किए गए सर्वेक्षण से यह तथ्य सामने आया है कि स्मार्टफोन एक हद तक तो सीखने की प्रक्रिया में मददगार साबित हुआ है, लेकिन इसके नकारात्मक प्रभावों को भी नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। इसमें दो राय नहीं कि एक समय महज बातचीत का जरिया माना जाने वाला मोबाइल फोन आज दैनिक जीवन की जरूरतों को पूरा करने वाला बेहद जरूरी उपकरण बन चुका है। खासकर कोरोना संकट के चलते स्कूल-कालेजों के बंद होने के बाद तो यह पढ़ाई का अनिवार्य हिस्सा बन गया। तब लगा था कि इसके बिना तो पढ़ाई संभव ही नहीं है। लेकिन नादान बच्चों के हाथ में मोबाइल बंदर के हाथ में उस्तरे जैसा ही है।

जाहिरा तौर पर ये उनके भटकाव और मानसिक विचलन का कारण भी बन सकता है। अब इसके मानसिक व शारीरिक दुष्प्रभावों पर व्यापक स्तर पर बात होने लगी है। यहां तक कि आस्ट्रेलिया समेत तमाम विकसित देश स्कूलों में मोबाइल के उपयोग पर रोक लगा रहे हैं।

# रेखा राज के समक्ष चुनौतियां...

डॉ. रमेश ठाकुर

भारतीय जनता पार्टी के शीर्ष नेतृत्व में भारी मंथन के बाद दिल्ली विधानसभा चुनाव नतीजे के 12वें दिन रेखा गुप्ता को मुख्यमंत्री बनाने की घोषणा हुई। मुख्यमंत्री के नाम पर चौंकाने वाली भाजपा की शैली विभिन्न राज्यों की तरह दिल्ली में भी जारी रही। भाजपा के जीते 48 विधायकों में शायद कोई एकाध नाम छूटा हो, जिसका नाम सोशल मीडिया पर मुख्यमंत्री के दावेदार के तौर पर न आया हो। कयास तो प्रवेश वर्मा को लेकर लगाए जा रहे थे, लेकिन अंत में वे पिछड़ गए। क्यों पिछड़े, इसका जवाब किसी के पास नहीं। 08 फरवरी के चुनाव परिणाम के दिन से लेकर 19 तारीख की देर शाम तक मुख्यमंत्री के नाम को लेकर भाजपा ने सस्पेंस बरकरार रखा। जैसे पिटारे से नाम निकला, सभी एकबार फिर चकित रह गए। ऐसा नाम जिसकी कल्पना तक किसी नहीं की थी।

मुख्यमंत्री के नाम का सस्पेंस 12वें दिन खत्म किया गया। सप्ताह भर तक नाम को गुप्त रखा गया। पार्टी ने विचार करके और आरएसएस की सिफारिश पर ही दिल्ली के शालीमार बाग विधानसभा क्षेत्र से चुनी गईं रेखा गुप्ता के नाम की घोषणा की। हालांकि, वरिष्ठता के लिहाज से रेखा गुप्ता अन्य विधायकों के मुकाबले बहुत जूनियर हैं। रेखा के नाम की जब घोषणा हुई, कई के चेहरे की रंगत बदल गई। भाजपा ने एक और नई परंपरा शुरू की है। चुनाव जीतने के बाद राज्यों में किसी बड़े चेहरे को मुख्यमंत्री के पद पर न बिठाने की। दिल्ली में भी कई प्रचलित व दिग्गज नेता मुख्यमंत्री पद के दावेदार थे, लेकिन उनके दावे धरे रह गए। अब मुख्यमंत्री बनने के बाद रेखा गुप्ता के समक्ष सियासी कौशल साबित करने की चुनौती है। चुनाव अभियान के दौरान दिल्ली के मतदाताओं से किए गए पार्टी के वायदों को जमीन पर उतारना सबसे बड़ी चुनौती है जिनमें फ्री की योजनाएं, बिजली-पेयजल की समस्या से निबटना, यमुना की सफाई, बेरोजगारी जैसे बड़े मसले शामिल हैं। इसके साथ परीक्षा आम आदमी पार्टी की भी है। पार्टी का गठन होते ही सत्ता में पहुंच जाने वाली पार्टी को अबतक विपक्ष का कोई अनुभव नहीं है और अब उसे यह साबित करना होगा कि विपक्ष की भूमिका में वे कितने सक्षम हैं।

भाजपा का चुनाव जीतने के बाद अंत तक मुख्यमंत्री के नाम को सार्वजनिक नहीं करने की चौंकाने वाली शैली इस समय चर्चाओं में है। ये सिलसिला बीते कुछ वर्षों से लगातार जारी है। पिछले ही साल मध्य प्रदेश और राजस्थान में इसी शैली ने सबको चौकाया था। मप्र में डॉ. मोहन यादव, राजस्थान में भजनलाल शर्मा को सामने लाकर पार्टी ने प्रदेशों में खलबली मचा दी थी। उन तीनों राज्यों के निर्णयों में एक बात जो कॉमन थी वह यह कि तीनों ही मुख्यमंत्री आरएसएस और भाजपा की राजनीतिक-संस्कृति में पले-बढ़े हैं। तीनों नाम संघ-भाजपा की आपसी सहमति से तय हुए। पेशे से वकील रेखा गुप्ता सालों से अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् से जुड़ी रही हैं। हरियाणा के जींद जिला स्थित नंदगढ़ में जन्मी रेखा गुप्ता को लेकर भाजपा ने मास्टर स्ट्रोक खेला। इस समय देश की ज्यादातर राज्यों में भाजपा की सरकारें हैं लेकिन इनमें किसी में महिला मुख्यमंत्री नहीं है। इसलिए राजधानी में महिला को मुख्यमंत्री बनाकर उस कमी को भाजपा ने दूर किया है। विपक्षी दल ये आरोप लगाते आए थे कि भाजपा महिला सशक्तिकरण की बात तो करती है, पर निभाती नहीं। पार्टी ने जातीय समीकरण को देखकर ही रेखा गुप्ता का चयन किया है। वह वैश्य समाज से संबंधित हैं और दिल्ली में वैश्य बहुतायत संख्या में है। पूर्व मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल भी वैश्य थे, उनकी काट पार्टी ने रेखा के जरिए की है। वैश्य समुदाय से जुड़े पार्टी के एक अन्य वरिष्ठ नेता विजेंद्र गुप्ता के नाम पर भी विचार हुआ, तब भी इस समीकरण को साध सकते थे लेकिन महिला होने के नाते रेखा गुप्ता का पलड़ा भारी पड़ा।

भविष्य की चुनौतियों की जहां तक बात है तो उसका मुकाबला करने के लिए न सिर्फ मुख्यमंत्री रेखा गुप्ता को जमीन पर उतरना पड़ेगा, बल्कि भाजपा की पूरी मशीनरी को सामूहिक रूप से दिल्ली में मोर्चा संभालना होगा। पार्टी ने चुनाव प्रचार के दौरान वायदों की बौछार कर दी थी जिन्हें पूरा करना होगा। वादे पूरे इसलिए करने होंगे, क्योंकि भाजपा को इसके जरिये देश के अन्य राज्यों को भी संदेश देना है। इसके बाद भाजपा को बिहार कूच करना है। दिल्ली का मौजूदा बजट 76 हजार करोड़ के आसपास है जिसमें नई सरकार को बेतहाशा वृद्धि करनी पड़ेगी, तभी सरकार सभी वायदों का खर्च उठा पाएगी। महिलाओं को नगद पैसे देना, पेंशन में बढ़ोतरी, बिजली-पानी फ्री, बस फ्री, प्रेग्नेंट महिलाओं की आर्थिक मदद इत्यादि।

रेखा गुप्ता की राजनीति अभी तक नगर निगम तक सीमित रही है। बड़े ओहदे का उन्हें अनुभव नहीं है। निगम में उनके द्वारा माइक तोड़ने की घटना, केजरीवाल को अनाप-शनाप कहने वाले बयान सोशल मीडिया पर तैर रहे हैं। बहरहाल, दिल्ली की राजनीति में चुनौतियों का दौर सत्ता पक्ष और विपक्षी दोनों के लिए शुरू होगा।